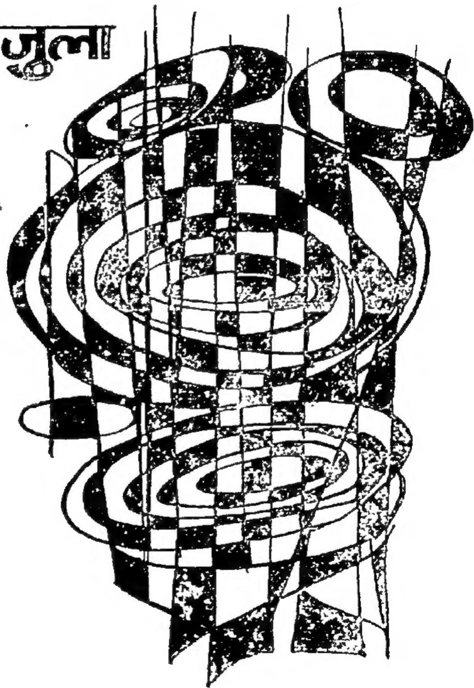
चेहरा एक : हजारों दर्पण

'मुखड़ा क्या देखे दर्पण में' उस युग की अभिव्यक्ति है, जिसमें मुखड़े और दर्पण का सम्बन्ध सौन्दर्य-बोध तक ही सीमित था। आज हमारे बोध का विस्तार भी हुआ है, हमारी छवियों का विस्तार भी हुआ है और उन छवियों को पकड़नेवाले दर्पण-साधनों का भी। उस समय जब हम अपनी एक विशेष मनःस्थिति के अवसर को ही दर्पण में क्षण-भर के लिए बाँध सकते थे, आज हम अपनी प्रत्येक मनः-स्थिति को चिरस्थायी अवधि के लिए बाँध सकते हैं। उस समय हम स्वयं दर्पण के समक्ष जाते थे, आज दर्पण स्वयं हमारी छवि को प्रतिबिम्बित करने को लालायित है। वे हमारी उस छवि के प्रति विशेष आकृष्ट नहीं हैं, जिसमें हम सजे-सँवरे हैं, कृत्रिम होते हैं। वे हमारे उन क्षणों को स्थापित करना चाहते हैं, जो हमारे सहज क्षण होते हैं, जिनमें हम स्वाभाविक और अनावृत होते हैं।

इस गीत-संकलन में साध्वी लेखिका ने उन संचित क्षणों को बाँधने का प्रयत्न किया है, जो एक अखंड जीवन का निर्माण करते हैं। हमारा हर वर्तमान क्षण आनेवाले क्षण के लिए कोई न कोई प्रेरणा लेकर आता है। उस प्रेरणा के प्रति लेखिका का कोई व्यामोह नहीं है। किन्तु उस क्षण के प्रति अवश्य मोह रहा है और उसे ही यहाँ प्रस्तुत किया है। कोई भी शाश्वत क्षण से बढ़कर नहीं होता या फिर सब क्षण ही होते हैं, कोई शाश्वत नहीं होता। इस दृष्टि से ये गीत हमारे जीवन का अवश्य प्रतिनिधित्व करेंगे।

चेहरा एक हज़ारों दर्पण

साध्वी मंजुला



आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

मूल्य : तीन रुपये पचास पैसे

प्रथम संस्करण, १९६९

० ०

प्रकाशक

कमलेश चतुर्वेदी

प्रबन्धक, आदर्श साहित्य संघ

चूरू (राजस्थान)

मुद्रक : रूपाभ प्रिंटर्स, दिल्ली-३२

'मुखड़ा क्या देखे दर्पण में' उस युग की अभिव्यक्ति है, जिसमें मुखड़े और दर्पण का सम्बन्ध सौन्दर्य-बोध तक ही सीमित था। आज हमारे बोध का विस्तार भी हुआ है, हमारी छवियों का विस्तार भी हुआ है और उन छवियों को पकड़ने वाले दर्पण-साधनों का भी। उस समय जब हम अपनी एक विशेष मनःस्थिति के अवसर को ही दर्पण में क्षण-भर के लिए बांध सकते थे, आज हम अपनी प्रत्येक मनः-स्थिति को चिरस्थायी अवधि के लिए बांध सकते हैं। उस समय हम स्वयं दर्पण के समक्ष जाते थे, आज दर्पण स्वयं हमारी छवि को प्रतिबिम्बित करने को लालायित हैं। वे हमारी उस छवि के प्रति विशेष आकृष्ट नहीं हैं, जिसमें हम सजे-संवरे हैं, कृत्रिम होते हैं। वे हमारे उन क्षणों को रूपायित करना चाहते हैं, जो हमारे सहज क्षण होते हैं, जिसमें हम स्वाभाविक और अनावृत होते हैं।

इस अनावृत अवस्था में हम चाहे सजे-संवरे न भी हों, किन्तु हम कम आकर्षक नहीं होते हैं। प्रत्युत हमारे लिए वह अवस्था अधिक सुखदायी होती है। इस उपक्रम में हम यह भी अनुभव करते हैं, हमारी कोई भी मनः-स्थिति भोंडी नहीं होती। वह बहुत सुन्दर होती है, क्षणों के प्रति प्रतिबद्ध होने पर भी उसका महत्त्व स्थायी होता है।

मैंने अपने इस गीत-संकलन में उन खंडित क्षणों को बांधने का प्रयत्न किया है, जो एक अखंड जीवन का निर्माण करते हैं। हमारा हर वर्तमान क्षण आनेवाले क्षण के लिए कोई न कोई प्रेरणा लेकर आता है। उस प्रेरणा के प्रति मेरा कोई व्यामोह नहीं है। किन्तु उस क्षण के प्रति अवश्य मोह रहा है और मैंने उसे ही यहां प्रस्तुत किया है। कोई भी शाश्वत क्षण से कटकर नहीं होता या फिर सब क्षण ही होते हैं, कोई शाश्वत नहीं होता। इस दृष्टि से मेरे ये गीत हमारे जीवन का अवश्य प्रतिनिधित्व करेंगे।

अन्त में अपने आराध्य आचार्यश्री तुलसी को अपने सम्पूर्ण समर्पण के साथ --

अनुक्रमणिका

१. इस विराटता के स्पर्शन से — १
२. प्राणों का उपहार भले लो — ३
३. अधर हमारे गीत पराये, इन अधरों से इस महफिल में — ५
४. इस अनजानी राह में — ७
५. आज अकेले तुम ही क्या — ६
६. जंग लगे अपने जीवन को — १०
७. गीतों से नभतल गुंजित है — १२
८. औरों को खुश रखते-रखते — १३
९. तुम्हारी याद ने बरबस मुझे जब-तब रुलाया है — १४
१०. चाहे कर न सकी मनचाहा मैं अपने इस विवश जनम में — १५
११. तुमने बस है दिया आज तक — १७
१२. पिला नहीं सकते थे माना चषक सुधा का — १६
१३. जीवनी में फूल औरों को लगे अंगार चाहे — २१
१४. मनमाना विष उगल रहे तुम — २३
१५. इन नयनों को कैसे मीचूं जिन नयनों में तुम प्रतिबिम्बित — २४

१६. औरों के घर अन्धकार कर अपने घर में दीप जलाना २५
१७. एक क्या अगणित लिए हैं वेदनाएं हम सभी जब २७
१८. ध्वंस के वातूल से ही २८
१९. आज मेरा मन न जाने क्यों उछलता जा रहा है ३०
२०. अहसानों का दीप जलाकर अपने घर को ३१
२१. यह आंसू करुणा से उपजा ३३
२२. आज जीवन का नया अध्याय फिर से हो रहा आरम्भ मेरा ३४
२३. क्यों पसारो हाथ अपने भाइयों के सामने तुम ३५
२४. हँसने पर तो खैर रुकावट ३७
२५. मन बेचारा एक ३८
२६. सखे ! इस जीर्ण चद्दर को ३९
२७. मौत को मत दो निमंत्रण जिन्दगी से जूझना है ४१
२८. आज दुनिया से मुझे नफरत अचानक हो गई ४२
२९. गगन में उड़ने पतगों की तरह ४४
३०. मंजिल से अनबन है मेरी, मित्रता है राह से ४६
३१. तुम कहो तो आंसुओं से गीत का निर्माण कर दूं ४७
३२. हमको तो आलोक चाहिए जलने वाले जला करें ४९
३३. जो तुम हार गए जीवन की बाजी उसको पुनः लगाओ ५०
३४. आज मेरे हृदय-नभ पर दूज का चन्दा उगा है ५१
३५. नहीं जरूरत बसे हमारे पास पड़ोसी ५२
३६. कठपुतली-से परवश जीवन पर भी तुमको नाज है ? ५४
३७. सन्देहों की इस दुनिया मे किसको क्या विश्वास दिलाऊं ! ५५
३८. कब तक दीप बुझाओगे तुम, कभी जलाना भी तो सीखो ५६
३९. हँसने-रोने-गाने का अब समय नहीं है ५७
४०. उपदेशों की सुधा पिलाना ५९
४१. चेतना पर आवरण कितने गिरा दो ६०
४२. चाह छोड़ दो अम्बर के तुम मायावी इन गीतों की अब ६१
४३. मुझ पर मेरा ही वश न चला ६२
४४. फिलग की इन तारिकाओं-सा लुभाना ६४
४५. जीवन के उपवन में खिलते रहें सदा ये फूल ६५
४६. तीर से मझधार में ले जा रहे हो ६६
४७. सपनों की इस दुनिया में भी ६८

४८. तुम एक पैर को मझधार में थामे हो ७०
४९. तुम कहते हो वर्तमान में जीकर देखो ७२
५० दर्द अपना दो मुझे तुम ७४
५१. किसी को देख उत्पथ मैं बिगाड़ूं सन्तुलन अपना ७५
५२. जीवन के इस रंगमंच पर हमने सब नाटक खेले हैं ७६
५३. इन विलासी राजमहलों से सुनो अब गीत श्रम के ७७
५४. तुम दान-पुण्य मत करो भले ही जीवन का व्यवहार बदल दो ७८
५५. कृत्रिम हास्य बिखेर कभी क्या असली रूप छिपा पाओगे ? ७९
५६. तुम आंगन में दीप जलाओ ८१
५७. हम तुम्हारे पंथ का अनुसरण करते ८३
५८. सुलगते तन पर छिड़क दो बूंद पानी ८५
५९. हर एक दीप के लिए कभी शीशे के महल नहीं होते ८६
६०. देश-प्रेम के गीत सुनहरे गानेवालो ! ८७
६१. नहीं जरूरत अजगर की जो डसने आए ८९
६२. शांतिसेना और शिवसेना भले ही मत बनाओ ९१
६३. हर किनारा तो डूबी नाव का बनता सहारा ९३
६४. सहते-सहते मैं इतनी अभ्यस्त हो गई ९५
६५. फूल की मुसकान लेकर क्या करूँगी ९६
६६. इन काले बालों पर ही तो मोती की मांगें फबती हैं ९८
६७. होली जलती रही रात-दिन आज दिवाली आई है ९९
६८. हम तो बंधे हुए कारा में १०१
६९. साथियो ! अब गिड़गिड़ाने का समय बिलकुल नहीं है १०२
७०. दर्पण के अनुरूप बदलते रहते हो तुम १०४
७१. सकपकाहट-मुसकराहट से कहीं अच्छी उदासी १०६
७२. आज मन स्वच्छन्द होकर छन्द करना चाहता है १०७
७३. जब से तुम इस नील गगन में १०९
७४. इस दुनिया को भरमा दूंगी ११०

इस विराटता के स्पर्शन से
हार गए जब से मेरे स्वर
तब से मैंने इस अवसर पर गाना गाना छोड़ दिया है।
दुलराया तुमने पीड़ा को
और टीसती बैचेनी को
तब से मैंने किसी महोत्सव पर मुसकाना छोड़ दिया है।

सुनकर गीत तुम्हारे सहसा बाँझ धरा पर अंकुर फूटे
अन्तरिक्ष से पानी बरसा, मायूसी के बन्धन टूटे
तुमने जख्मों को सहलाया
अपने अन्तस् की ममता से
तब से इन रिसते घावों पर लेप लगाना छोड़ दिया है।

बिना जले बुझ जाने वाले दीपक से मन ऊब गया जब
बिना उगे मिट जाने वाले तारों में मन डूब गया जब
तुमने अपने मूक इशारों से
कर्तृत्व उभारा सब में
तब से मैंने उपदेशों का ज़हर पिलाना छोड़ दिया है।

तुमने जितनी व्याकुलता दी उतना ही विश्वास बढ़ा है
तुमने जितनी आहें सरजीं उतना ही मृदु हास चढ़ा है

नाजुक शीशे-से टूटे दिल को
जब से तुमने साधा है,
तब से जग के अहसानों का दीप जलाना छोड़ दिया है।

जिन पौधों से पत्थर फूटे उन पर तुमने फूल खिलाए
जिस दीपक से तम बिखरा आलोक स्वयं का देने आए
उखड़ी हर धड़कन को तुमने
समाधान दे दिया अचानक
तब से इन मार्मिक चोटों का दर्द दिखाना छोड़ दिया है।

कितनों के आँसू पोंछे हैं इन कोमल वत्सल हाथों से
बेजानों में जान भरी है ममता से छल-छल आँखों ने
जब से तुम मिल गए युगों की
आशाएँ साकार हो गईं
तब से इन कृत्रिम मेलों में मन बहलाना छोड़ दिया है।

इस विराटता के स्पर्शन से
हार गए जब से मेरे स्वर
तब से मैंने इस अवसर पर गाना गाना छोड़ दिया है
दुलराया तुमने पीड़ा को
और टीसती बेचैनी को
तब से मैंने किसी महोत्सव पर मुसकाना छोड़ दिया है।

प्राणों का उपहार भले लो
प्राणों का आकार भले लो
पर प्राणों का भार अन्त तक फिर तुमको ही वहना होगा।

हम माटी हैं हमको प्राणों की सचमुच पहचान नहीं है
कोई आँख-मिचौनी जब तब कर जाता पर मान नहीं है
सांसों का संसार भले लो
सांसों का आधार भले लो
जनम-जनम तक पुण्य-पाप जो मिले तुम्हें ही सहना होगा।

पता नहीं क्यों सदय राम ने पत्थर को जीवित कर डाला
और दिया निर्दोषी सीता को उसने क्यों देश-निकाला
वरदानों का सार शाप है
और स्वयं अभिशाप पाप है
हम वनवासी पत्थर हों यदि साथ तुम्हें ही रहना होगा।

हम तो हैं निःशब्द तुम्हारा हो सकता कोई उत्सव है
कौन समझता उस भाषा को जिसमें चिड़ियों का कलरव है
नहीं चाहते जाने कोई,
पूछे यदि अनजाने कोई

३

अधर हमारे गीत पराये, इन अधरों से इस महफिल में,
कोई गाए और, किन्तु हम तो ये गीत नहीं गाएँगे।

उन अधरों से गीत सुनेंगे
जिन पर तुम खुद ही अंकित हो
उन नयनों से प्रीत करेंगे
जिनमें तुम ही प्रतिबिम्बित हो
भले करे विश्वास न कोई
इस सागर में अपनी गागर
खाली कर देने से कोई
हम ही रीत नहीं जाएंगे।
अधर हमारे गीत पराये, इन अधरों से इस महफिल में,
कोई गाए और, किन्तु हम तो ये गीत नहीं गाएंगे।

तुमने जब-जब दीप जलाया
हमने बुझा दिया बचपन से
तुमने फूल खिलाए हमने
तोड़ गिराए जिद्दीपन से
जिन हाथों में तम पाना है
हमने अपने हर जीवन में

इस अनजानी राह में
पहचान वाले मिल कहीं कर दें न मेरी दूर मंजिल।

कौन साथी है कि जो बनते नहीं बाधा विजय में
आज तक की ज़िन्दगी ने तो यही अनुभव किया है
जिस पवन ने दे दिया सहयोग जलने में दीए को
अन्त में हर प्राण उसने दीप को धोखा दिया है
इस उलझती डोर ने
मुझको डराया किन्तु आखिर इसी ने तो दे दिया हल।

साध्य की दूरी नहीं विचलित करेगी प्राण मेरे
पथ के संघर्ष ने हर चरण पर मुझको दिया बल
कान में आकर पड़ा स्वर किसी परिचित का रुआंसा
देखती हूं हृदय में तब से मची है तीव्र हलचल
इस सुलगती आग से
भागें भले ही दूर, आखिर ज्योति दी इसने स्वयं जल।

साथियों के योग से मंज़िल मिली होगी किसी को
किन्तु है विश्वास मेरा स्वयं का पौरुष प्रबल हो

हर विभव ने ही पुकारा है विभव को आज तक तो
बरसते बादल वहीं जाकर स्वयं ही जो सजल हो
इस अंधेरी राह में
क्षणभग चपल जल दीप कोई ले कहीं मुझको नहीं छल।

५

आज अकेले तुम ही क्या
ये ऋतुएं भी विपरीत हो गई
इस जीवन-नभ का सूरज क्या, किरणें भी चुपचाप सो गईं।

तम को गले लगाने वालों को भी याद करेगा कोई?
जग को मीत बनाने वालों की भी पीड़ हरेगा कोई?
मैंने कभी न चाहा
भागीदार बनो मेरी विपदा के
तुम ही क्या, इस भीड़भाड़ में मुझसे मेरी सांस खो गई।

अच्छा है जीने का कोई नया तरीका हाथ लगा है
जिसका लिया सहारा उसने ही देकर विश्वास ठगा है
सम्हल-सम्हलकर पैर धरूंगी
सावधान कर दिया मुबारक!
मेरी आंसू की धारा मेरे चुभते अनुताप धो गई।

शंकित आंखें उखड़ी धड़कन, कंपन सीमा लांघ चुका है
जो होना हो गया अवांछित फिर भी क्या यह दैव झुका है?
किन्तु करूं क्यों दोषारोपण
तुम पर अब निर्दोष साथियो!
मेरी चपल अंगुलियां ही जब बगिया में विष-बीज बो गईं।

सीपों को क्या पता कि उनको मोती का उपहार मिला क्यों
मोती के मद में छककर गोताखोरों को हरा रही है
चुंधियाए अपने नयनों को उस दीपक पर किया निछावर
औरों को आलोक लुटा अपने घर जिसने तम को पाला।

७

गीतों में तन्मयता गुंजित है
और यश वासित फूलों में
लेकिन चुप हो गए अगर हम तो ये गीत अधूरे होंगे।

गाने वाले कंठ हज़ारों नभ-धरती को गुंजा देंगे
खिलने वाले अनगिन फूल तुम्हारी महफ़िल महका देंगे
लेकिन गाने-महकाने वालों
में नाम हमारा भी है
बाती जो सो गई अगर तो सारे दीप अधूरे होंगे।

सूरज-चाँद भले इस सारे नभ को आलोकित करते हैं
पर कुटिया के अन्धकार को ये लघु दीपक ही हरते हैं
नहीं फ़र्क़ है अणु-महान् में
मूल्य सभी का अपना-अपना
मुक्तावलि खो गई अगर तो सारे सीप अधूरे होंगे।

किस-किस को हम सखा समझलें, किस किस से फिर घृणा करें हम
एक अखंड विराट् प्रेम की सीमा में किसलिए मरें हम?
भारी मन को हल्का करने
हमने मित्र बनाये नव-नव
मन की गाँठ न खुली अगर तो सारे मीत अधूरे होंगे।

चेहरा एक : हज़ारों दर्पण

औरों को खुश रखते-रखते
अपनी खुशी गँवाई मैंने
अपने आँसू से औरों की नकली प्यास बुझाई मैंने।

खेत नहीं वोये जाते हैं चिड़ियों की खातिर ही सारे
घर सुलगाकर तीर्थ करे जो उसके सारे पुण्य उधारे
कहने को तो कह देते हैं
लेकिन सभी यही करते हैं
अपने घर में तम झड़काकर जग में ज्योति जलाई मैंने।

हँसते चेहरे से अंतर की अब तक व्यथा छिपाती आई
कभी स्वयं की खुशियों पर पीड़ा की परत चढ़ाती आई
कठपुतली ज्यों जो जब चाहे
खुद अपने को मोड़-मोड़कर
जिस मंजिल के लिए तड़पती वह मंजिल ठुकराई मैंने।

कोई इसे कहे नादानी कोई छलना कहकर गाए
अपने-अपने मन से सबने अपने-अपने अर्थ लगाए
लेकिन अपने इस जीवन की
हालत किसको क्या बतलाऊँ!
सौ-सौ मनुहारें कर ये विपदाएं पास बुलाई मैंने।

तुम्हारी याद ने बरबस मुझे जब तब रुलाया है।
युगों से टीसते मन को किसी मिस अब भुलाया है॥

न जाने क्यों चपल मन यह सदा हैरान रहता है
स्वयं की बात क्या पर से, स्वयं को भी न कहता है
कभी उल्लास भर जाता न मन खुद में समाता है
कभी अखिन्नता घेरे न तब कुछ भी सुहाता है
तुम्हारी लरजती छाया विमोहित कर रही मुझको।
भटकती जा रही उस ओर जिधर संकेत पाया है॥

देखती हूँ कसक मेरी न अब अपनी रही बिल्कुल
जगत ने मोल लेकर उलझनें, मुझको दिया है हल
बोलती आज तक विष में रही अब छीनता जग है
अकेली शून्य में थी आज तक अब साथ में खग है
किंतु यह मन स्वयं की रिक्तता को भर नहीं पाया।
अचानक खिंच रही जैसे मुझे तुमने बुलाया है॥

१०

चाहे कर न सकी मनचाहा मैं अपने इस विवश जनम में।
जन्म दुबारा लेकर भी मैं अपना वादा पूर्ण करूँगी।

जुदा-जुदा राहें हैं सबकी
अलग-अलग आहें है सबकी
क्या समझूँ किसको समझाऊँ
भिन्न-भिन्न चाहें हैं सबकी
काट रही मंजिल की दूरी मेरी अपनी सबल भुजाएँ।
बिना किसी की मदद लिए मैं स्वयं इरादा पूर्ण करूँगी।

प्रथम चरण में मिली सफलता
किसी भाग्यशाली राही को
मिला अगर विष से भी जीवन
किसी जादुई विषपायी को
तो क्या मैं अमृत के प्याले में ढालूं इस हालाहल को।
जीवन के अंतिम क्षण तक भी क्या मर्यादा चूर्ण करूँगी ?

आज नहीं कल मिल जायेगी
मंजिल को मिलना ही होगा

चिपकी हैं डाली से जो
उन कलियों को खिलना ही होगा
यों जल्दी में अपना दाँव कभी न हारनें वाली हूँ मैं।
आज नहीं तो कल-परसों तक अपना वादा पूर्ण करूंगी।

११

तुमने बस है दिया आज तक
मुझको गम ही गम
पर मैं अपने इस जीवन का आनन्द लुटाने आई हूँ।
तुमने पत्थर-सा जिया
आज तक यह जीवन
पर मैं अपने इस जीवन का लो राज बताने आई हूँ ॥

यह जीवन तो है विकसित फूलों का उपवन
जिसमें तितली-भौंरे दोनों ही आते हैं
यह जीवन तो है पके फलों वाली डाली
जिस पर कौवा-कोयल दोनों ही गाते हैं
तुम दुनिया से कट कर
संन्यासी बनते हो
पर मैं दुनिया में ही अपना संन्यास दिखाने आई हूँ ॥

दुनिया से दूर भागने का क्या अर्थ हुआ
मन के घेरे से बाहर नहीं निकलते हैं
ऊपर दिखलाकर सुधा जगत को छलना क्या
भीतर से जब मनमाना ज़हर उगलते हैं
तुम दुहरा जीवन जी-जीकर

खुद को धोखे में डाल रहे।
मैं बाहर-भीतर इस जीवन को एक बनाने आई हूं॥

शंकर बनने की धुन में विषधर से खेले
मन की चाहों को देश-निकाला भले दिया
औरों की खातिर किया स्वयं को अर्पित भी
सब कुछ करके अहसान जगत का मोल लिया
तुमने विष ही विष पिया
आज तक जीवन में
मैं विष को अमृत कर मुरझा जीवन सरसाने आई हूँ॥

पिला नहीं सकते थे माना चषक सुधा का।
अधरों से जल छीन गरल में तो न डुबाते ॥

यह मन खुद से टकराकर ही टूट गया है
मंजिल क्या पथ भी अथ में जब छूट गया है
प्यास बुझाने से पहले घट फूट गया है
रूठी यह तकदीर कि जग भी रूठ गया है
खिला नहीं सकते अधरों पर मुसकानों को।
दर्द पुराना याद दिलाकर तो न रुलाते ॥
पिला नहीं सकते थे माना चषक सुधा का।
अधरों से जल छीन गरल में तो न डुबाते ॥

कट-कटकर यों संधने में विश्वास नहीं है
मिट-मिटकर बनने में भी विश्वास नहीं है
टीस रहा जो भीतर में वह हास नहीं है।
रुक-रुककर आए वह जिन्दा श्वास नहीं है।
सुला नहीं सकते थपकी से उभरे दुःख को
सुप्त वेदना को जल छिड़कन से न जगाते
पिला नहीं सकते थे माना चषक सुधा का।
अधरों से जल छीन गरल में तो न डुबाते ॥

यह शबनम जीवन का जिसको भान नहीं है
बनने और बिगड़ने की पहिचान नहीं है

एक पवन के झोंके से यह मिट सकती है
अपने सुख-दुख का इसको अनुमान नहीं है

जगा नहीं सकते मूर्च्छित प्राणों की तन्द्रा
जीवित प्राणों पर भी क्यों कब्र बनाते ?

पिला नहीं सकते थे माना चषक सुधा का
अधरों से जल छीन गरल में तो न डुबाते ॥

वीनती मैं फूल औरों को लगे अंगार चाहे।
इस सनातन जीत को कोई समझ ले हार चाहे ।।

सोचने का क्रम सभी का एक-सा होता नहीं है
आँकने की छूट मनचाही सभी को जब मिली है
फिर क्रिया पर ही लगे प्रतिबन्ध इतने क्यों न जाने
फूल खिलता है वहां जिस डाल पर कलियाँ खिली हैं
है परायापन सभी में समझता है कौन किसको
मुक्ति की जंजीर को कोई समझ ले भार चाहे ।।

सम्हलता हर चरण कोई चोट खाकर ही अजानी
किन्तु क्या जाने गगन में उड़ रही शैतान पांखें
स्नेह से हर एक दीपक ने दिया आलोक निश्छल
क्या समझ लेंगी इसे ये घूरती संदिग्ध आँखें ?
पा लिया नि:सीम पारावार का मैंने किनारा
दर्द क्यों ? कोई उसे कहता रहे मझधार चाहे ।।

सहजता की दे दुहाई पन्न रहा कोरा दिखावा
सभ्यता ने ही हमें ये क्रूर हत्याएं सिखाई

कौन किसको देखता है ? कौन सुनता है किसी की ?
कांपते कर से लिखाई जा रही मिथ्या गवाही
मौन को तुम समझते हो स्वयं दुर्बलता किसी की
सहज इस मेरे कथन को समझ लो प्रतिकार चाहे ॥

उन नयनों को कैसे मीचूं जिन नयनों में तुम प्रतिबिम्बित ।
उन अधरों को कैसे रोकूं जिन अधरों पर तुम हो स्पंदित ।।

तुम्हें बुलाने द्वार-द्वार पर मैंने कितने तोरण बांधे
तुम्हें खिलाने मैंने कितने नये-नये थे भोजन रांधे
लेकिन तुम तो दूर-दूरन्तर होते गए हमारे से ही
उन गीतों को कहाँ भेज दूं जो तुमको करते अनुरंजित ।।

हम भी भोले हिरणों की ज्यों बहुत बार धोखा खाते हैं
जिनको पाना बहुत सरल है उनके लिए उलझ जाते हैं
सूई जो खो गई सदन में बाहर कैसे मिल पायेगी ?
जिसको हम ढूंढते युगों से वह अपने में ही अन्तर्हित ।।

जिन नयनों में तुम हो उनमें और न प्रतिबिम्बित हो जाए
अधर हमारे तुम्हें छोड़कर किसी अपर को कभी न गाए
इसीलिए नयनों-अधरों के द्वार हमारा पहरा प्रतिपल
इन कानों में केवल तुम ही तुम हो जाओ पल-पल गुंजित ।।

कोयल कौवे को छलती है पर हम तो अपने भाई को
देख पड़ोसी के घर क्रन्दन बजा रहे हम शहनाई को
संकटग्रस्त किसी भाई को जता-जता अहसान बचाना
हमको तो मंजूर नहीं है।

कोयल कौवे को छलती है पर हम तो अपने भाई को
देख पड़ोसी के घर क्रन्दन बजा रहे हम शहनाई को
संकटग्रस्त किसी भाई को जता-जता अहसान बचाना
हमको तो मंजूर नहीं है।

ध्वंस के वातुल में ही
निकलता निर्माण का स्वर
स्वस्थ ही करना नहीं क्या वर्ष में आया हुआ ज्वर ?

पूछते हो तुम कि चलतीं आँधियाँ क्यों
टहनियाँ, फल, फूल, पत्तों को गिराती ?
क्यों रुका है स्रोत सौरभ का अचानक ?
क्यों न कोयल बैठ मीठे गान गाती ?
प्रकृति के इस द्वार यदि पतझड़ न आता
क्या कभी ऋतुराज
सरसाता धरा को स्वयं आकर ?

फूटते ज्वालामुखी क्यों इस धरा पर ?
और धरती-कंप क्यों विध्वंस करते ?
क्यों मचाती प्रलय नदियाँ बाढ़ के मिस ?
क्यों दावानल में बताओ वन झुलसते ?
माँगता सर्जन सदा बलिदान धरती और नभ से
जीर्ण घर को
तोड़ने के बाद ही होता नया घर ।

बीज का बलिदान अंकुर को उगाता
फूल का बलिदान ही मंदिर सजाता
दीप के बलिदान ने तम को हरा है
बूंद का बलिदान मरुस्थल को बचाता
एक का संहार, सर्जन दूसरे का,
मृत्यु ही क्यों
स्वयं अमृत भी सदा होता विनश्वर।

यह जनपथ है इस पर तुम भी हम भी
चलते कभी किसी की रोक नहीं है।
अहसानों का दीप जलाकर अपने घर को
आलोकित करने का मुझको शौक नहीं है।
जो औरों के स्नेह-दान पर ही पग-पग
निर्भर रहता है वह सच्चा आलोक नहीं है।।

आज जीवन का नया अध्याय फिर से हो रहा आरम्भ मेरा।
सावधानी की जरूरत, कर न दे आलोक में कोई अंधेरा॥

जो पुराने पृष्ठ थे वे फाड़ डाले, अब नयी ही लेखनी कर में उठाई
जो लिखूंगी सत्य स्पष्ट यथार्थ होगा, सत्य झुठलाने नहीं दूंगी सफाई
मूल्य सुन्दर से अधिक है
सत्य का जो आंक जाने
सत्य के घर आज तक होता रहा शिव और सुन्दर का बसेरा।

इस नये अध्याय में अंकित न होंगी वे अवांछित जीर्ण औ मनहूस बातें
फिर न आयेंगी कभी भी भूल से भी तुम समझ लो वे भयावह दीर्घ रातें
जो मिलीं इस पंथ में
अनुभूतियां मुझको शुभाशुभ
बस उसी आलोक से इस गहन तम में हो सकेगा शुभ सवेरा।

थीं जहां पगडंडियां अब राजपथ होंगे उसी संकीर्ण वन में
थी जहां उत्तेजना हर एक कण में अब वहां होगी महक बहकी पवन में
तुम न शबनम को समझ
जल-बूंद यों नीचे गिराओ
हो गई वह मुक्ति जिसको मानते थे हम सदा से कुटिल घेरा।

२२

आज जीवन का नया अध्याय फिर से हो रहा आरम्भ मेरा।
सावधानी की जरूरत, कर न दे आलोक में कोई अंधेरा॥

जो पुराने पृष्ठ थे वे फाड़ डाले, अब नयी ही लेखनी कर में उठाई
जो लिखूंगी सत्य स्पष्ट यथार्थ होगा, सत्य झुठलाने नहीं दूंगी सफाई
मूल्य सुन्दर से अधिक है
सत्य का जो आंक जाने
सत्य के घर आज तक होता रहा शिव और सुन्दर का बसेरा।

इस नये अध्याय में अंकित न होंगी वे अवांछित जीर्ण औ मनहूस बातें
फिर न आयेंगी कभी भी भूल से भी तुम समझ लो वे भयावह दीर्घ रातें
जो मिलीं इस पंथ में
अनुभूतियां मुझको शुभाशुभ
बस उसी आलोक से इस गहन तम में हो सकेगा शुभ सवेरा।

थीं जहां पगडंडियां अब राजपथ होंगे उसी संकीर्ण वन में
थी जहां उत्तेजना हर एक क्षण में अब वहां होगी महक बहकी पवन में
तुम न शबनम को समझ
जल-बूंद यों नीचे गिराओ
हो गई वह मुक्ति जिसको मानते थे हम सदा से कुटिल घेरा।

२३

क्यों पसारो हाथ अपने भाइयों के सामने तुम।
इन भुजाओं पर जरा विश्वास करना सीख लो अब ।।

ये भुजाएं रेत का सोना बनातीं
गरल को अमृत बनाकर हैं दिखाती
देवता श्रम के भुजाएं ही बनातीं
आदमी को आदमी बनना सिखातीं
क्यों निहारो दूसरों के मुख रुआँसे बन बताओ।
छोड़ नौका का भरोसा स्वयं तरना सीख लो अब ।।

जो उठा है दूसरों के बल अभी तक
वह पतंगों की तरह निश्चित गिरा है
जिस अंधेरे को मिटाया दीप रखकर
दीप बुझते ही पुनः आकर घिरा है
मानकर दुर्दैव अपना तुम न बैठो बन अकर्मा।
स्वयं की इस रिक्तता को स्वयं भरना सीख लो अब ।।

हीनता की ग्रंथियां जब तीव्र होतीं
शक्तियों पर स्वयं ही आवरण चढ़ता

दूसरों को भाग्यशाली मानकर खुद
चापलूसी दीनता का पाठ पढ़ता
क्यों न अपनी आवरित इन शक्तियों को आजमाओ।
और कुंठित शस्त्र का बस जंग हरना सीख लो अब ॥

२४

हँसने पर तो खैर रुकाव
रोने पर भी इतना बन्धन ?
भस्म लगाने पर जब पहरा
कौन लगाने देता चन्दन ?

हर उपवन में नयी पौध है, पौध-पौध पर नया फूल है
पर माली से अनबन कर ली यही हमारी रही भूल है
इसीलिए हम प्रायश्चित वहन करते अपनी भूलों का
आज पराए क्या अपने भी उड़ा रहे चुपचाप धूल हैं
जीने पर तो रोक भले ही
मरने पर भी इतना क्रंदन ?
हँसने पर तो खैर रुकावट
रोने पर भी इतना बन्धन ?

औरों की नजरों में अच्छे कहलाएं इसलिए चले थे
सूखे अधर तृप्त हो जाएँ बन निर्झर इसलिए ढले थे
लेकिन कौन समझता किसके बलिदानी इस आत्मार्पण को
पंछी छोड़ चले वृक्षों को जो उनके ही लिए फले थे
चलने को अपराध मान लो
रुकने का भी करते खंडन ?
हँसने पर तो खैर रुकावट
रोने पर भी इतना बन्धन ?

२५

मन वेचारा एक
और अनगिन आघात सताते
दो आंखों में कैसे सौ-सौ आंसू रहे समाते ?

दो चरणों ने ही मंजिल की दूरी पाट दिखाई
उभयकरों ने ढाके की मलमल थी कभी वनाई
मन की तरह न एकाकी कोई भी शायद पथ में
इसीलिए हम भी जब-तब उसको ही रहे दवाते ॥

मन की भी होती है कोई अपनी भूख निराली
तृप्त नहीं कर पाएगी उसको यह अमृत-प्याली
पीड़ाओं का करो विभाजन कुछ मन, कुछ तन को दो
मन के इस दर्पण को क्यों तुम इतना मलिन वनाते ?

मन के हारे हार और उसकी जय विजय हमारी
जग से भाग गया उस पर भी मन की चारदीवारी
वंशी टूट गई तो क्या है वंशीधर जब तक है
डाली से चटके फूलों पर भी मधुकर मंडराते ॥

सखे ! इस जीर्ण चद्दर को
कि तुम यों द्रोपदी का चीर मत समझो ।
व्यथा गंभीर मत समझो ।।

कलेजा चीर सागर का तरी इठला रही जग में
उतर गंभीर पानी में मचल जाती कभी पल में
उगलते हैं ज़हर कितना विषैले जीव पानी में
भरम में फंस न जाना तुम समन्दर के महाजल में
अभी धारा बहुत लम्बी तुम्हें लो पार [illegible] में
थके हो इसलिए मझधार को
तुम तीर मत समझो

पराजित कर हजारों को समर में जीत पाई है
पताका लहरती यश की सभी की प्रीत पाई है
गगन को बांध सीमा में मुदित मानव हुआ मन में
उसी ने खोद ली लम्बी आज-कल बीच खाई है
किसी के प्राण हरकर के विजय का दंभ भरना क्या ?
प्रगट पशुता भरी जिसमें
उसे तुम वीर मत समझो ॥

सखे ! इस जीर्ण चद्दर को
कि तुम यों द्रोपदी का चीर मत समझो।
व्यथा गंभीर मत समझो ॥

मौत को मत दो निमन्त्रण ज़िन्दगी से जूझना है।
तुम सियारों सम न चीखो, सिंह बनकर गूंजना है।।

कौन-सा पथ, जो कभी निर्विघ्न मंजिल से मिलाए
कौन सरिता जो किसी लेटे मनुज को जल पिलाए
हर विजय को देखनी पड़ती पराजय प्रथम क्षण में
जो ज़हर है मारता वह समय आने पर जिलाए
हार खुद की ही निराशा जीत आशावान् साहस
जब स्वयं ही जानते हैं क्या किसी से पूछना है
मौत को मत दो निमन्त्रण ज़िन्दगी से जूझना है।
तुम सियारों सम न चीखो, सिंह बनकर गूंजना है।।

ज़िन्दगी से ऊबकर कितने गए हैं आज तक मर
कौन-सा हल निकलता है इस अवांछित कर्म से लो
आज तक के देख लो इतिहास के पन्ने उलटकर
कायरों की पंक्ति में युग-युग गिने जाते रहे जो
एक-से रहते नहीं दिन किसी अभिमानी धनी के
दुःख का उत्कर्ष ही तो क्या न सुख की सूचना है!
मौत को मत दो निमन्त्रण ज़िन्दगी से जूझना है।
तुम सियारों सम न चीखो, सिंह बनकर गूंजना है।।

है न जंगल-नगर-घर में शान्ति का स्वर
मैं स्वयं में स्वयं से ही सोचती हूं
क्या करे कोई स्वयं के बाग में
जानकर विष-बीज मैं ही बो गई॥

गगन में उड़ते पतंगों की तरह
तुम भी किसी के हाथ का परवश खिलौना ।।

क्या इसी का नाम सचमुच जिन्दगी है
बोलना-चलना सभी पर के सहारे
आँख के आंसू, अधर के गीत तक भी
बन्ध हो जाते किसी के पा इशारे
एक जीवन और अनगिन मन लदे हैं
क्या न पशुओं की तरह यह भार ढोना
गगन में उड़ते पतंगों की तरह
तुम भी किसी के हाथ का परवश खिलौना ।।

स्वयं के कर्तृत्व पर अहसान पर का
श्रम किसी का फल किसी को मिल रहा है
या किसी के हाथ से दो बूंद पानी
फूल मुरझाया अपरहित खिल रहा है
स्वयं का अस्तित्व ही जैसे नहीं है
वह कभी क्या बन सका निर्दोष सोना !
गगन में उड़ते पतंगे की तरह
तुम भी किसी के हाथ का परवश खिलौना ।।

मंजिल से अनवन है मेरी, मित्रता है राह से।
मुझको मिली प्रेरणा हर क्षण मेरी अपनी आह से॥

गतिमत्ता ही जीवन है जब, मंजिल की आतुरता क्यों ?
सहज भाव ही अनासक्ति है, फिर चलने में त्वरता क्यों ?
है विराम की तड़प न मन में, ममता है उत्साह से ॥

मेरा मौन स्वयं ही मेरी स्पष्ट सुसयत भाषा है
और अनाकुलता ही मेरी व्यक्त परिष्कृत आशा है
नहीं फलित कामना हुई है केवल मन की चाह से ॥

तैर लिए तुम खूब सतह पर तह में जाना भूल गए
तुम्हें क्या पता दुनिया कितनी निज कुटिया में फूल गये
मिले समन्दर के मोती गहरे-गहरे अवगाह से ॥

तम की चद्दर बुन-बुनकर अपने हाथों आलोक गंवाया
मन के इस उजले दर्पण पर जब अनजाने मैल चढ़ाया
मन का मैल न धुल जायेगा चंचल सलिल प्रवाह से ॥

३१

तुम कहो तो आंसुओं से गीत का निर्माण कर दूं।
शत्रु से गलवांह मिलकर हाथ की तलवार धर दूं ॥

सृष्टि का हर कण मुझे पहचानता है
हूँ न मैं इस नियति के कर का खिलौना
स्वयं की ही शक्तियों पर नाज मुझको
मिट्टी का मैं कर दिखाऊं शुद्ध सोना
तुम कहो तो मैं विना ही वांसुरी, मधुरतर
निज गीत से सम्पूर्ण जग को अमर स्वर दूं।
तुम कहो तो आंसुओं से गीत का निर्माण कर दूं।
शत्रु से गलवांह मिलकर हाथ की तलवार धर दूं ॥

मैं तुम्हारे ही इशारों पर समर्पित
स्वयं की कोई नहीं अवशेष ईप्सा
मैं तुम्हारे हाथ का नीला कमल हूँ
है नहीं मुझको किसी सर की अभीप्सा
तुम कहो तो मैं स्वयं की सुरभि से इस
विश्व के हर रंध्र में मधु गंध भर दूं ॥
तुम कहो तो आंसुओं से गीत का निर्माण कर दूं।
शत्रु से गलवांह मिलकर हाथ की तलवार धर दूं ॥

हमको तो आलोक चाहिए जलने वाले जला करें।
सूखे अधर सलिल के प्यासे ढलने वाले ढला करें।।

किसकी-किसकी पीड़ा देखें
किस-किसको हम पुचकारें
किस-किस से हम करें लड़ाई
किस-किस को फिर ललकारें
सबको अपनी-अपनी चिंता हम अपने हिल-मिला करें ।।

सर्दी-गर्मी आंधी - वर्षा
सहते सभी अकेले [illegible]
फल खाने की मौसम [illegible]
अनचाहे लगते [illegible] [illegible]
उड़े तृप्त होते ही पंछी [illegible]

जो तुम हार गए जीवन की बाजी उसको पुनः लगाओ
मिली हार हर एक विजय को इससे इतना मत घबराओ।

हर पौधा पतझड़ के तीव्र थपेड़ों बाद फलित होता है
जीवन के इस समरांगण में हर चेहरा हंसता-रोता है
देख-देख इतिहास सृष्टि का अपना मन आश्वस्त करो तुम
एक बार अब अपने इस सोए पौरुष को पुनः जगाओ ।।

सहज भाव से मिली विजय का मूल्य नहीं होता है उतना
तपा अनल में बार-बार यह निर्मल स्वर्ण चमकता जितना
अच्छा है कोई बिन तपे खपे ही चमक गया दुनिया में
हम हिमायती अपने श्रम के तुम भी श्रम के दीप जलाओ ।।

श्रम के फल मीठे होते हैं आज नहीं तो कल मिल जाएं
पौरुप के बल ही ऊसर धरती पर हमने फूल खिलाए
चलो तमस को दूर भगाएं यह आलोक स्वयं उतरेगा
क्यों अतीत में उलझ रहे हो वर्तमान का लाभ उठाओ ।।

३४

आज मेरे हृदय-नभ पर दूज का चन्दा उगा है।
जल उठीं सारी शमाएं तम दुबकता-सा भगा है ॥

देख ली रातें अंधेरी और पूनम का उजेरा
मुक्त नभ में भर उड़ानें रच लिया था स्वयं घेरा
आज फिर से तोड़ तन्द्रा यह अचानक मन जगा है ॥

हर प्रलय के बाद होता सृष्टि का निर्माण नूतन
हर खुशी के बाद फिर देखा गया हर एक उन्मन
क्षणिक इस आलोक ने इन भद्र आंखों को ठगा है ॥

लो चलो तुम देख आएं सृष्टि के उस पार क्या है ?
झूलते इस रम्य झूले का सही आधार क्या है ?
आज उजड़ी इस धरा पर फिर नया मेला लगा है ॥

मोतियों में बदलते हैं आज मेरे करुण आंसू
जो कलंकित दीखता था आज प्रिय लगता सुधांशु
शत्रु था जो आज तक वह बन गया भाई सगा है ॥

३५

नहीं जरूरत वसे हमारे पास पड़ोसी,
हमने एकाकी ही रहना सीख लिया है ॥

सामूहिक जीवन में कितना सहना पड़ता
एक-एक के लिए समर्पित रहना पड़ता
मन की घुटन लिए मन में जाने कव तक फिर
अनचाहे इस तीव्र अनल में दहना पड़ता
नहीं जरूरत मित्रों की अव, अपने मन की
वातें अपने मन से कहना सीख लिया है
नहीं जरूरत वसे हमारे पास पड़ोसी,
हमने एकाकी ही रहना सीख लिया है ॥

सिर से पैर दवाने तक के यंत्र वन गए
फिर क्यों लें अहसान किसी का तुम्हीं वताओ
मन वहलाने पास रेडियो और सिनेमा
अपने-अपने घर में ही वस स्वर्ग मनाओ
नहीं ज़रूरत एक-दूसरे की अव हमको
जव से यांत्रिकता में वहना सीख लिया है
नहीं ज़रूरत वसे हमारे पास पड़ोसी,
हमने एकाकी रहना सीख लिया है ॥

एक-दूसरे के सुख-दुख के भागी बनकर
हमदर्दी दिखलाने का युग बीत गया है
वैभव-सत्ता सुख-सुविधा में पागल बनकर
आज मनुज सौहार्द प्रेम से रीत गया है

अपने घर का भेद न औरों को देंगे हम
जो भी बीते चुप हो सहना सीख लिया है
नहीं ज़रूरत बसे हमारे पास पड़ोसी,
हमने एकाकी रहना सीख लिया है ।।

कठपुतली-से परवश जीवन पर भी तुमको नाज है ?
चुप हो जाए अन्यायों पर वह मुर्दा आवाज़ है।

पत्थर को बिठला मंदिर में खूब चाव से पूज लिया
मनचाहा तब पैरों नीचे रौंद-रौंद अपमान किया
वह पत्थर है इसीलिए सब कुछ सह लेता बिना कहे
सह लेने में ही बस मानो छिपा हुआ कुछ राज है।

लेकिन देखो छेड़ सर्प को क्या परिणाम निकलता है
जुदा डाल से करो फूल को फिर देखो क्या खिलता है
जिसमें है चैतन्य नहीं वह अपना अहं कुचलने दे।
जो दबकर भी जी लेता है वह निष्प्राण समाज है।

नहीं क्षमा का अर्थ न्याय अन्याय सभी सहते जाएं
निकले आंखों से आंसू पर अधरों पर गाना गाएं
आज क्रान्ति का स्वर फूटा है रुंधे हुए इन कंठों से
हम अपने कर्तव्यों में रत भले जगत् नाराज़ है।।

३७

सन्देहों की इस दुनिया में किसको क्या विश्वास दिलाऊं !
मुंह में नमक लिए उनको फिर मधु का कैसे स्वाद चखाऊं !

पूर्वाग्रह का पहन लिया है जब तुमने यह पीला चश्मा
दुनिया का हर रंग तुम्हें पीला ही तो लगने वाला है
नकली घड़ी कलाई पर तुमने बांधी जब बड़े चाव से
दुनिया का हर समय तुम्हें दिन-रात सदा ठगनेवाला है
सबको अपना-अपना पथ ही सीधा और सुगम लगता है
तब मैं कैसे अपने घर की सही-सही स्थितियां परखाऊं !
सन्देहों की इस दुनिया में किसको क्या विश्वास दिलाऊं !
मुंह में नमक लिए उनको फिर मधु का कैसे स्वाद चखाऊं!

एक बार तुम अपनी चद्दर को धोकर तो स्वच्छ बनाओ
फिर उस पर मनचाहा कोई रंग स्वयं खिलने वाला है
जो घट भरा हलाहल से उसको तुम एक बार ख़लकाओ
सुधा भरो फिर तुम देखो शव को जीवन मिलने वाला है
दर्पण को धुंधला कर लाए धूल जमाकर आस-पास की
उस दर्पण में रूप तुम्हारा कैसे मैं अनुरूप दिखाऊं !
सन्देहों की इस दुनिया में किसको क्या विश्वास दिलाऊं!
मुंह में नमक लिए उनको फिर मधु का कैसे स्वाद चखाऊं!

कब तक दीप बुझाग्रोगे तुम, कभी जलाना भी तो सीखो।
कितनों को बेघर कर डाला, कभी बसाना भी तो सीखो ॥

बुझा दिए धरती के सारे दीप हुग्रा क्या
नभ के चमकीले तारे चमकेंगे युग-युग
दुर्बल की हत्या करना है पाप भयंकर
उस पंछी पर तीर ? जो रहा दाने चुग-चुग
खूब रुलाया इन आंखों को, कभी हँसाना भी तो सीखो ॥

बनने ग्रौर बिगड़ने में कितना ग्रन्तर है ?
शायद दामन ग्रौर कफन जितना-सा होगा
मरघट-पनघट एक समझने वालो ! बोलो,
पनघट के प्यासों की मरघट आशा होगा ?
बहुत पिलाया जहर ग्राज तक, सुधा पिलाना भी तो सीखो ॥

रामराज्य लाने की धुन में जनक धनुप का
लगे तोड़ने पर देखो सीता न मिलेगी
कृष्ण बांसुरी से ग्रपनी बगिया सरसाने
सुखा रहे पर वापस यह तुमसे न फलेगी

हँसने-रोने-गाने का अब समय नहीं है।
सावधान हो, कर्म-क्षेत्र आह्वान दे रहा।।

हाथों पर दे हाथ बने निष्कर्मा सारे
देख सिनेमा, सरकस मन राजी करते हैं
कभी याद कर-कर अतीत की रम्य दशा को
घड़ी-दो घड़ी हो उदास आँसू भरते हैं।
क्यों अतीत की स्मृति, आशा भावी की पल-पल
जीवन तरी हमारी वर्तमान खे रहा।।

अपने ही हाथों अपनी रक्षा होनी है
पर-निर्भर वनकर क्यों खुद को वेच रहे हैं
अपनी ही सेना से हुए पराजित पग-पग
थके हुए पौरुष ने संकट खूब सहे हैं।
हो अनजान स्वयं के संचित वल से मानव
विना जरूरत औरों के अहसान ले रहा।

यह धरती माँगा देती लेना जानें तो
ये वादल मोती बरसाते पहचानें तो

अन्नाभाव, अर्थ का संकट नहीं ज़रा भी
नहीं शत्रु का भय बिलकुलही, सच मानें तो।
है अभिशाप गरीबी और अमीरी दोनों
सोया पौरुष मनुज स्वयं को शान दे रहा॥

उपदेशों की सुधा पिलाना
अब ज़रा तुम छोड़ दो
जीवन के व्यवहारों का ही असर आज पड़ने वाला है।

झूठ बुरा है तुम कह सकते जग कहता है
पर अवसर पर हरिश्चन्द्र बनता है कोई
थोड़े से संकट में आलम्बन अनृत का
यही देखकर कितनों ने आस्थाएं खोईं
किसी चीज़ का मोल बढ़ाना
अब ज़रा तुम छोड़ दो
देख सुफल उस ओर स्वयं यह मनुज आज बढ़ने वाला है।

आस्था का युग बीत चुका किस पर हो निष्ठा
जो प्रत्यक्ष वही सबका विश्वासपात्र है
जो भी नये-पुराने तथ्य सामने उनकी
पग-पग पर हो रही समीक्षा एकमात्र है।
मनमाना यह दोषारोपण
अब ज़रा तुम छोड़ दो
स्नेहदान से यह दीपक घर-घर का तम हरने वाला है।।

४१

चेतना पर आवरण कितने गिरा दो
चेतना जड़ को पराजित कर रहेगी
सुलगती यह एक चिनगारी कभी क्या
दब रुई के ढेर नीचे सब सहेगी ?

ठोकरें खाकर पड़े खामोश पत्थर
क्योंकि उनकी चेतना विकसित नहीं है
जो अहं को कुचलकर भी जी रही हैं
वस्तुत: वह चेतना पुलकित नहीं है
बीज को चाहे दबा दो तुम धरा में
मूर्च्छना हो अंकुरित सब कुछ कहेगी ॥

रोक दो चाहे सलिल को बांधकर तुम
किंतु वह खतरा स्वयं के ही लिए है
टूटता जब बांध मच जाता प्रलय तब
आवरित होकर जले कब तक दीए हैं
चेतना के सजग प्रहरी चेतना को स्थिर करो तुम
बह रही जो सरित आखिर तक बहेगी।

चाह छोड़ दो अंवर के तुम मायावी इन गीतों की अब
धरती के गीतों से ही अपना जीवन कटने वाला है।

अच्छा है नभ का खग कोई आ जाए मन वहला जाए
सपनों का साथी भारी मन को क्षण-दो क्षण सहला जाए
लेकिन कव तक सपनों की दुनिया में आखिर सोयेंगे हम
जागृत जीवन के साथी से ही यह दुःख मिटने वाला है।

सूरज ने आलोक दिया नभ के समान भूमंडल को
धरती ने भी सलिल पिलाया नभवासी आखण्डल को
पर दोनों की अपनी-अपनी सीमाएँ-मर्यादाएँ हैं
नभ धरती का अन्तराल है कभी नहीं पटने वाला है।

दूर खड़ा जो लगे मनोहर पास पहुँचते पत्थर हैं
जो हैं परे पहुँच से वह ही वन जाता पैगम्वर है
अंधा चाँद भले ही रोशन हो जाए अव रवि-किरणों से
पर अन्तर का अंधकार अपने हाथों मिटने वाला है।

४३

मुझ पर मेरा ही वश न चला
तुम कौन जो मुझको बाँधोगे !

मैं जिस दुनिया में जीती हूँ उसमें मेरा अनुराग नहीं
मेरी इस मैली चद्दर में भी देखो बिलकुल दाग़ नहीं
सौ-सौ प्रतिबन्ध लगाए तुमने मेरे नाजुक मानस पर
आराध न पाई मैं खुद को
तुम कौन उसे आराधोगे !

इस जड़ तन से नाटक रचवा सकते हो मनमाना चाहे
लेकिन यह मन की मैना तो अपने पिंजड़े में मस्त रहे
इस जीवन के समरांगण में जब हार-जीत जो मिले सहे
जिसने डोरी को तोड़ दिया
उसको धागे से बाँधोगे !

देखो यह मन का नाजुक दर्पण टूट न जाए ध्यान रहे
जो टूट गया तो कभी नहीं संधने वाला है भान रहे
शीशे-मोती से भी यह मन अभिमानी है क्या जान रहे

ऐ कुशल कलाकारो !

मन को फिर कैसे किससे सांधोगे !

मुझ पर मेरा ही वश न चला
तुम कौन जो मुझको बाँधोगे !

४४

फिल्म की इन तारिकाओं-सा लुभाना
आज वर्षों बाद उपवन में खिला है फूल कोई।

ज़िन्दगी के द्वार पर पहरा लगाए
क्यों खड़े थे आज इतने आदमी हैं
गगन से गिरती हुई इस बूँद को
पीने न रेगिस्तान की कोई कमी है
सो रहा शिशु ज्यों अमा की गोद में हो
त्यों धरा की गोद में बरसात से है धूल सोई।

भोगकर कारा हुए आज़ाद जो हैं
मूल्य वे ही जानते स्वायत्तता का
सूर्य की इन रश्मियों की मूल्यवत्ता
आंकता कोई अगर होती न राका ?
रात की शबनम पड़ी ज्यों पत्तियों पर
यह अजानी आज सौ-सौ आँसुओं से भूल रोई।

जीवन के उपवन में खिलते रहे सदा वे फूल।
गन्धहीन मनमोहक क्षण में खिरकर होते धूल।।

ऐसे फूल खिले न खिले क्या हो इन पर अनुराग
खिलकर खिर जाते केवल पीछे रहता है दाग़
देखे जब तक ऊमस के पीछे मैंने वातूल।
जीवन के उपवन में खिलते रहे सदा वे फूल।
गन्धहीन मनमोहक क्षण में खिरकर होते धूल।।

चमकीले ये नखत खींचते रहते अपनी ओर
हर मंज़िल के पहले-पीछे रहा अंधेरा घोर
जिधर धरूँ ये चरण अचानक बींधे तीखे शूल।
जीवन के उपवन में खिलते रहे सदा वे फूल
गन्धहीन मनमोहक क्षण में खिरकर होते धूल।।

मनचाहे सपनों पर देखो कितने परत चढ़े
अनचाहे कितने गीतों के मार्मिक भाव पढ़े
मझधारा में खिसक रहे हैं अब ये दृढ़तर कूल।
जीवन के उपवन में खिलते रहे सदा वे फूल।
गन्धहीन मनमोहक क्षण में खिरकर होते धूल।।

तीर से मझधार में ले जा रहे हो
इसलिए शायद कि
सोई इन भुजाओं में नया उल्लास उभरे।
छोड़कर आलोक तम सहला रहे हो
इसलिए शायद कि
तम से आंख अंज जाए अलौकिकतेज निखरे।

जो युगों से अधर प्यासे थे, सभी की प्यास हरते आ रहे हो
किन्तु मेरे इन विलखते युगल अधरों को अधिक तरसा रहे हो
इसलिए शायद कि
सूखे कंठ से कोई नया स्वर सहज विखरे।

भटकते अनजान चरणों पर जगी करुणा कि पथ दिखला रहे हो
और मेरे लड़खड़ातेचरण युग को कौन-सी धुनमें वृथा भटका रहे हो
इसलिए शायद कि
भटके चरण अपने आप कोई राह उतरे।

जो उमंगों से लिए हैं भार अनहद चाहते उनको स्वयं हल्का वनाना
जो घवरा रही मैं भार से उस पर भला क्यों भार यों लादो अजाना
इसलिए शायद कि
दवकर भार से चैतन्य का नवतार सिहरे।

आज तक सबको हँसाया नयन से टप-टप टपकते आँसुओं को मोल लेकर
जो न हँसना और रोना जानती उस ऑंख को तुमने रुलाया है अजाना
दर्द देकर
इसलिए शायद कि
इस नम आँख से सद्यस्क-सा मृदु हास नितरे।

नखतों की इस दुनिया से भी
वहुत दूर है देश तुम्हारा
आँखों की ये पुण्य पुतलियाँ ही अथवा परिवेश तुम्हारा।

पर हम तो झाँका करते हैं सूनी-सूनी इन गलियों में
ज्यों भौंरे खोजा करते मकरन्द इन्हीं नाजुक कलियों में
दीर्घ प्रतीक्षा में कितनी सदियाँ
ये वीत गईं अनजाने
मिला न दिव्य प्रकाश नयन ये उलझ गए हैं फुलझड़ियों में
तो अव हम अपने आँसू से नाटक रचना छोड़ रहे हैं
क्योंकि सुना है लिए हमारे यही सुखद उपदेश तुम्हारा
नखतों की इस दुनिया से भी
वहुत दूर है देश तुम्हारा
आँखों की ये पुण्य पुतलियाँ ही अथवा परिवेश तुम्हारा।

तुम तम की घाटी में सोए हमने चद्दर दूर हटाई
पता नहीं किस ओर गए तुम मिली नहीं धुँधली परछाईं
देख तुम्हें उस दिव्य लोक में
जहाँ न तम-आलोक द्वैध है
मर्त्यलोक की ये नाजुक दुवली-पतली किरणें शरमाईं
तो अव हम तुमको धरती पर आने का अनुरोध करें क्यों?

मझधारा को छोड़ दिया जब अब क्या है अवशेष किनारा
नखतों की इस दुनिया से भी
बहुत दूर है देश तुम्हारा
आँखों की ये पुण्य पुतलियाँ हो अथवा परिवेश तुम्हारा।

पैर भले ही डगमग करते मन मंज़िल के पास हमारा।
घर का दीप बुझाएँ कैसे, तम हरता कब नभ का तारा।
चाहे जितना उड़ लो आखिर
पैर टिकेंगे धरती पर ही
इसलिए माटी के पुतले ने है तुमको सदा पुकारा
हार-जीत किसकी कब होगी यह तो कहना बहुत कठिन है
लेकिन उसी कोर्ट में हम हैं जहाँ मामला सुना तुम्हारा
नखतों की इस दुनिया से भी
बहुत दूर है देश तुम्हारा
आँखों की ये पुण्य पुतलियाँ ही अथवा परिवेश तुम्हारा।

तुम एक पैर को मझधार में थामे हो
इसलिए कि
कोई डूब न जाए जल में इन तूफानों से
और दूसरे को तट पर ही टिका रहे
इसलिए कि
कोई ऊब न जाये धरती के अरमानों से।

हम देख रहे हैं दूर खड़े विस्तार अपार समन्दर का
तुम देख रहे हो दूर खड़े विस्तार हमारे अन्दर का
हम घूम रहे हैं धरती की मनमोहक इन रंगरलियों में
तुम घूम रहे हो मानस की सूनी-सूनी इन गलियों में
तुम एक पैर को अन्तरिक्ष में बढ़ा रहे
इसलिए कि
नभ भी जाग सके इन अन्तर के आह्वानों से
और अपर को धरती में ही गढ़ा रहे
इसलिए कि
धरती कंप न जाए इन वायव्य विमानों से।

फूलों पर रखकर एक चरण शूलों को पर से सहलाते
जीवन को गिरवी रखकर तुम मृत्युंजय बनना सिखलाते
कितनों को रुला-रुलाकर भी कहते हो अब तुम मुसकाओ
ऊपर से डाँट रहे पर कहते अधरों पर गाना गाओ

तुम एक हाथ से जगा रहे सोये जग को
इसलिए कि
वह अनजान न रह जाए अपनी पहचानों से
अपर हाथ में उनकी अंगुली थामे हो
जो जगे हुए हैं
पर घबराते प्रगतिपूर्ण अभियानों से।

तुम कहते हो वर्तमान में जीकर देखो
पर अतीत में उलझे इस पागल मन को कैसे समझाऊँ ?

इस अतीत के घेरे ने मुझको बाँधा है
और अनागत खींच रहा अनचाहे मन को
वर्तमान में जीने का अवकाश कहाँ है ?
सूनी पड़ी अयोध्या राम गए हैं वन को
तुम कहते हो हँसने का बस यही समय है
लेकिन इस जख्मी दिल को यों देख रुआँसा कैसे गाऊँ ?

पत्थर से पानी बरसे यह अनहोनी है
पर बादल भी जल बरसाना छोड़ रहे हैं
दिलवालों से संवेदन की आस छोड़कर
हृदय शून्य के पीछे सारे दौड़ रहे हैं
मन को भारी रखना तुम्हें पसन्द नहीं है
पर मनमाना अर्थ लगाने वालों को क्या हृदय दिखलाऊँ ?

५०

दर्द अपना दो मुझे तुम
दर्द को सुख में बदलने की कला मैं जानती हूँ।
इन रुआँसी पुतलियों में
हास बिखराकर मचलने की कला मैं जानती हूँ।

कौन राही है कि जो गलबाँह काँटों से मिला है ?
कौन राही है कि फूलों ने न जिसका मन लुभाया ?
फूल-काँटों की फसल के खेत कब होते जुदा हैं ?
जीत का हकदार वह जो हार में है मुसकराया
भेज दो पत्थर-दिलों को पास मेरे तुम किसी मिस
स्वयं पिघलेंगे यहाँ वे

५१

किसी को देख उत्पथ मैं बिगाड़ूँ सन्तुलन अपना
नहीं शायद उचित होगा।
किसी को देखकर उन्मन बने मायूस मन अपना
नहीं शायद उचित होगा।

सही है हम नहीं जीते अकेले जंगली बनकर
निभाना साथ दुनिया का हमें भी तो ज़रूरी है
कि हँसना, बोलना, गाना पराए हाथ बेचा है
जनम कर ज़िंदगी की आज तक साधें अधूरी हैं
न जाने कौन क्या कह दे भयाकुल संचलन अपना
नहीं शायद उचित होगा।

तुम्हारे पास अविकल शक्तियों का स्रोत बहता है
मुझे भी डाह नहीं किंचित् स्वयं का श्रम फला करता
अजाने लूटकर मेरे सदन को हँस रहे हो तुम
इसी अन्याय से मेरा कलेजा जला करता है
किसी को देखकर गिरते करूँ मैं भी पतन अपना
नहीं शायद उचित होगा।

दर्द अपना दो मुझे तुम
दर्द को सुख में बदलने की कला मैं जानती हूँ।
इन रुआँसी पुतलियों में
हास बिखराकर मचलने की कला मैं जानती हूँ।

कौन राही है कि जो गलबाँह काँटों से मिला है?
कौन राही है कि फूलों ने न जिसका मन लुभाया?
फूल-काँटों की फसल के खेत कब होते जुदा हैं?
जीत का हकदार वह जो हार में है मुसकराया
भेज दो पत्थर-दिलों को पास मेरे तुम किसी मिस
स्वयं पिघलेंगे यहाँ वे
क्योंकि जलने की कला मैं जानती हूँ।

सोच सकते हो मिले हैं पैर फौलादी किसी को
इसलिए ही पंथ के काँटे नहीं सबको सताते
किन्तु अपने ही कलेजे पर धरो तुम हाथ पहले
फिर बताओ टीसते ये हृदय रोते हैं कि गाते?
आग भड़का दो भले तुम जिन्दगी के द्वार पर ही
इस भड़कती आग में
बन सलिल की लघु बूँद ढलने की कला मैं जानती हूँ॥

५२

जीवन के इस रंगमंच पर हमने सब नाटक खेले हैं।
स्वर्गों के सुख से लेकर कारागृह से संकट झेले हैं॥

बीते दिन वापस कब आते जो हैं वे भी बीत रहे हैं
क्या बतलाएँ सुख-दुख हमने निर्विशेष हो सदा सहे हैं।
उजड़ा-उजड़ा जीवन का जो एक चरण पूरा हो पाया
वहीं आज हम देख रहे हैं लगे हुए अद्‌भुत मेले हैं॥

जिन आँखों ने नीर बहाया वे ही पुलकित हुईं समय पर
सूखी पथरीली धरती पर सावन में फूटे हैं अंकुर।
शूल-फूल का पौधा कोई जुदा नहीं होता समझो
राष्ट्रपिता बनने वालों ने भी भोगी पहले जेलें हैं॥

जीवन छोटा घटना अनगिनत किन-किन का हम नाम गिनाएँ
हम हैं कौन बाग़ की मूली बड़ों-बड़ों की यही दशाएँ।
वह सौभागी या निर्भागी जिसका जीवन एक रूप है
हम तो परिवर्तन के हामी इसीलिए सिकुड़े फैले हैं॥

५३

इन विलासी राजमहलों से सुनो अब गीत श्रम के।

आज तक जिनमें अभागी बन्दिनी बन नाग-कन्या
प्यार का अजगर जहाँ बेभान बनकर सो रहा था
ले लिया संन्यास पौरुष ने छिपाकर आत्मग्लानि
दासता की विजय पग-पग, अहं सबका सो रहा था
थी जहाँ रातें अँधेरी आज सौ-सौ सूर्य चमके।

राजमहलों में प्रदर्शनियाँ सजाई जा रही हैं
थे जहाँ दरबार लगते हैं वहाँ संगीतशाला
संग्रहालय बन रहे हैं, रासमन्दिर थे सुहावन
देश-सेवा में जुटी है अब सुकोमल राजबाला
जो खुशी में मग्न थे वे गा रहे हैं गीत श्रम के।

सृष्टि इसका नाम है जो मन्दिर को पत्थर बना दे
और पत्थर को कभी शीशा बनाकर जगमगा दे
जो कभी महारानियों को दासियाँ सब कर दिखा दे
धूल उड़ते मरुस्थल में कमल की खेती लगा दे
जो सुरागृह थे कभी वे भोजनगृह बन आज दमके।

५४

तुम दान-पुण्य मत करो भले ही जीवन का व्यवहार बदल दो।
और गरीबों का शोषण करने वाला व्यापार बदल दो।

धर्म नाम पर बँटे जा रहे भाई-भाई
सम्प्रदाय के नाम भयंकर छिड़ी लड़ाई
भेद-भाव पनपाने वाले कुत्सित क्रूर विचार बदल दो।

पूजा करते-करते कितने युग बीते हैं
मिले नहीं भगवान, नयन अब तक रीते हैं
धर्म और भगवान नाम पर पनपे अत्याचार बदल दो।

धर्मग्रन्थ में बँधे धर्म को मुक्त करो अब
धर्मस्थान में पड़े धर्म का कष्ट हरो अब
तथाकथित धार्मिक लोगों के जमे हुए संस्कार बदल दो।

भाई अपने भाई को जो गले लगाए
मानव के द्वारा मानवता पूजी जाए
यही धर्म का मर्म, असत् आचार, क्रूर व्यवहार बदल दो।

५५

कृत्रिम हास्य विखेर कभी क्या असली रूप छिपा पाओगे ?
पीड़ा-कंपित इन अधरों से गीत खुशी के क्या गाओगे ?

हँसने पर तो यहाँ रुकावट
रोने पर भी पहरा है
पता नहीं क्यों आज मनुज का
दुवका - दुवका चेहरा है।
दुनिया के इस दर्पण ने अनगिन प्रतिविम्व उतारे हैं।
उन्हें साफ करने दुनिया के किस सर में तुम जाओगे ?

हर्ष-विषादों की भी अपनी-
अपनी भाषा होती है
सोने की खानें होतीं पर
रहा सीप में मोती है
आँख मींच ली अगर किसी ने क्या दुनिया ही नहीं रही।
फूलों को ढँकने से क्या सौरभ को कभी छिपा पाओगे ?

दुनिया की नज़रों को धोखा
देना सहज नहीं है मानो
अपने कौशल से दुनिया के
कौशल को ज़्यादा पहचानो
अच्छा है हम अपना सही-सही परिचय ही दे दें सबको।
समझदार बच्चों का कैसे गुड़िया से मन बहलाओगे ?

५६

तुम आँगन में दीप जलाओ
स्नेहदान है काम हमारा
तुम उपवन में फूल खिलाओ
सलिल-पान है काम हमारा ।।

आज जमाना सब मिलकर श्रम करने का है
श्रम से ही यह धरा स्वर्ग बनने वाली है
जहाँ प्रतिष्ठा मुक्त भाव से होती श्रम की
वहाँ मनाई जाती हरदम दीवाली है
तुम रहस्यमय ग्रन्थ रचो फिर
तत्त्व-ज्ञान है काम हमारा ।।

अपने-अपने योग्य सभी का श्रम होना है
सूरज-सा आलोक न मिल सकता तारों से
सबका श्रम मिलकर ही सबकी पूर्ति करेगा
विजय मिली है लघु महान् इन हथियारों से
तुम पूजा का थाल सजाओ
स्तवन-गान है काम हमारा ।।

मेघ कहाँ बरसे मालूम नहीं मेघों को
सरिता को क्या भान, कौन जनपद प्यासा है!

जग के लिए स्वयं का आत्मसमर्पण करते
वृक्षों को बस फलने की ही अभिलाषा है
रिक्त खज़ाना भर दिखलाओ
उचित दान है काम हमारा ।।

५७

हम तुम्हारे पंथ का अनुसरण करते
इसलिए ही छोड़ महफिल की विलासी
दीप मरघट पर जलाया
हम तुम्हारी बाँसुरी का स्वर पकड़ते
इसलिए ही सींच अपने श्रम-कणों को
फूल पतझड़ में खिलाया।

कैद में बंदी पड़े थे सब,
न कोई मुक्ति का आसार हमको
इस जगत में दीखता था
हाथ का दीपक बुझा खुद राह धूमिल
उखड़ती थी धड़कनें, पल-पल कलेजा चीखता था
हम तुम्हारी चेतना पर हैं निछावर
इसलिए ही दे स्वयं की चेतना
शव को पुनः जीवित बनाया।

चल रही धोखाधड़ी में
खो गया विश्वास
अपना भी, पराया भी, सभी का
ठग रहे कोई अँधेरे में किसी को

जग के लिए स्वयं का आत्मसमर्पण करते
वृक्षों का बस फलने की ही अभिलाषा है
रिक्त खजाना भर दिखलाओ
उचित दान है काम हमारा ॥

५७

हम तुम्हारे पंथ का अनुसरण करते
इसलिए ही छोड़ महफिल की विलासी
दीप मरघट पर जलाया
हम तुम्हारी बाँसुरी का स्वर पकड़ते
इसलिए ही सींच अपने श्रम-कणों को
फूल पतझड़ में खिलाया।

कैद में बंदी पड़े थे सब,
न कोई मुक्ति का आसार हमको
इस जगत में दीखता था
हाथ का दीपक बुझा खुद राह धूमिल
उखड़ती थी धड़कनें, पल-पल कलेजा चीखता था
हम तुम्हारी चेतना पर हैं निछावर
इसलिए ही दे स्वयं की चेतना
शव को पुनः जीवित बनाया।

चल रही धोखाधड़ी में
खो गया विश्वास
अपना भी, पराया भी, सभी का
ठग रहे कोई अँधेरे में किसी को

जग के लिए स्वयं का आत्मसमर्पण करते
वृक्षों को बस फलने की ही अभिलाषा है
रिक्त खज़ाना भर दिखलाओ
उचित दान है काम हमारा ।।

५७

हम तुम्हारे पंथ का अनुसरण करते
इसलिए ही छोड़ महफिल की विलासी
दीप मरघट पर जलाया
हम तुम्हारी बाँसुरी का स्वर पकड़ते
इसलिए ही सींच अपने श्रम-कणों को
फूल पतझड़ में खिलाया।

कैद में बंदी पड़े थे सब,
न कोई मुक्ति का आसार हमको
इस जगत में दीखता था
हाथ का दीपक बुझा खुद राह धूमिल
उखड़ती थी धड़कनें, पल-पल कलेजा चीखता था
हम तुम्हारी चेतना पर हैं निछावर
इसलिए ही दे स्वयं की चेतना
शव को पुनः जीवित बनाया।

चल रही धोखाधड़ी में
खो गया विश्वास
अपना भी, पराया भी, सभी का
ठग रहे कोई अँधेरे में किसी को

भरे उजाले में ठगा जाता रहा मानव कभी का
हम तुम्हारे बाग में बन सुमन खिलते
इसलिए ही रह स्वयं प्यासे तड़पते
प्राण को पानी पिलाया।

५८

सुलगते तन पर छिड़क दो बूँद पानी
वेदना का अंत करना चाहती हूँ।
तड़पते मन पर खिला कृत्रिम हँसी
सबके दिलों में तृप्ति भरना चाहती हूँ।

सत्य के मृदु वृक्ष पर जब गोलियाँ दागी गई हैं
तब वितथ को ही मुझे पुचकारना होगा विवश बन
बेसहारा प्राण की जब चाह ठुकराई गई है
तब तक दहकती दाह को कब तक सँजोएगा अवश तन
शिथिल हैं यदि ये भुजाएँ, कागजी
किश्ती लिए मैं जलधि तरना चाहती हूँ।
सुलगते तन पर छिड़क दो बूँद पानी
वेदना का अन्त करना चाहती हूं।

नील नभ पर नीड़ की जो योजनाएँ ढह गई जब
तो मुझे इन टहनियों से वास्ता करना पड़ेगा
चटखकर जो टहनियों ने भी दिया धोखा अचानक
तो मुझे निज घाव को मरहम बिना भरना पड़ेगा
तन भले दब जाए मृत के भार से
मन का विपुलतम भार हरना चाहती हूँ।
सुलगते तन पर छिड़क दो बूँद पानी
वेदना का अंत करना चाहती हूँ।

५९

हर एक दीप के लिए कभी शीशे के महल नहीं होते।
हर एक फूल के लिए कभी कब बहते धरती पर सोते॥

नाजुक कागज के फूल बिना पानी के ही रहते खिलते
ये नभ के अगणित फूल हमें बिन मोल चुकाये ही मिलते
लेकिन उनसे कब तृप्ति मिली जो होते भीतर में थोथे॥

वह धन्य कि जिसके सारे शुभ सपने चरितार्थ हुआ करते
जिसके मन की मायूसी को खुशियों से हैं कोई भरते
लेकिन देखा है बहुत जनों के अधजागे सपने सोते॥

यह पुण्य-पाप, यह स्नेह-ताप जीवन के ही हैं अंग अमर
यह जनम-मरण, यह विजय-हरण सब होता आया धरती पर
जिनका जीवन अर्पित पर-हित बस याद रहेंगी वे मौतें॥

६०

देश-प्रेम के गीत सुनहरे गानेवालो !
आज देश को खोया निज सम्मान चाहिए।
भारत का अब नव-इतिहास बनानेवालो !
खून नहीं इसको अपना अभिमान चाहिए ॥

देख रही मैं देशवासियों की छाती पर
भाषा का अजगर बैठा फुफकार रहा है
देख रही मैं दैत्य भयंकर मजहब के
तांडव नर्तन के सम्मुख शिव भी हार रहा है
देख रही मैं प्रान्त नाम पर भारतीय अब
भाई को भी ग़ैर समझ दुत्कार रहा है
राष्ट्र एकता का संदेश सुनानेवालो !
आज राष्ट्र को स्वार्थों का बलिदान चाहिए ॥

एक अखण्ड राष्ट्र का नारा भी सुनती हूँ
पर लगता टुकड़े-टुकड़े में बँटने को है
घृणा और विश्वासहीनता की झंझा से
करुणा मैत्री के बादल अब छँटने को हैं
जब दे दिया खड्ग बन्दरों के हाथों में
भारत का यह शीश लग रहा कटने को है

पहन मुखौटा देशभक्त बन आनेवालो !
सही देशभक्तों की अब पहचान चाहिए ॥

आज सभी को अपने ही घर की चिन्ता है
फिर चाहे यह देश समन्दर में बह जाए
आज सभी को अपना पेट भरे यह चिन्ता
सारा देश भले भूखा-प्यासा रह जाए
निज सन्तानों का यह हाल देखकर बोलो
भारत माता अपना दर्द किसे कह पाए
सुजला सुफला शष्य श्यामला धरतीवालो !
इस भारत को अब पवित्र परिधान चाहिए ॥

देश-प्रेम के गीत सुनहरे गानेवालो !
आज देश को खोया निज सम्मान चाहिए ।
भारत का नव-इतिहास बनानेवालो !
खून नहीं इसको अपना अभिमान चाहिए ॥

६१

नहीं जरूरत अजगर की जो डसने आए
हमने अजगर को भी डसना सीख लिया है।

सड़कों पर से रोज गुजरते उजले लोगों
ने पहने हैं अब नकली बेजान मुखौटे
पुते हुए हैं आज सफेदी से जो चेहरे
छिपे हुए हैं उनमें धब्बे मोटे-मोटे
नहीं जरूरत जादूगर जो ठगने आए
हमने जादूगर को ठगना सीख लिया है
नहीं जरूरत अजगर की जो डसने आए
हमने अजगर को भी डसना सीख लिया है।

छोटी-छोटी दीवारें खुद खींच-खींचकर
हमने अपने हाथों घेरे रच डाले हैं
कहने को हम सांस ले रहे मुक्त गगन में
पर दिल के दरवाजे पर सौ-सौ ताले हैं
नहीं जरूरत कारागर को अपने घर में
बन्दी बनकर हमने बसना सीख लिया है
नहीं जरूरत अजगर को जो डसने आए
हमने अजगर को भी डसना सीख लिया है।

पहन मुखौटा देशभक्त बन आनेवालो !
सही देशभक्तों की अब पहचान चाहिए ।।

आज सभी को अपने ही घर की चिन्ता है
फिर चाहे यह देश समन्दर में बह जाए
आज सभी को अपना पेट भरे यह चिन्ता
सारा देश भले भूखा-प्यासा रह जाए
निज सन्तानों का यह हाल देखकर बोलो
भारत माता अपना दर्द किसे कह पाए
सुजला सुफला शस्य श्यामला धरतीवालो !
इस भारत को अब पवित्र परिधान चाहिए ।।

देश-प्रेम के गीत सुनहरे गानेवालो !
आज देश को खोया निज सम्मान चाहिए ।
भारत का नव-इतिहास बनानेवालो !
खून नहीं इसको अपना अभिमान चाहिए ।।

६१

नहीं ज़रूरत अजगर की जो डसने आए
हमने अजगर को भी डसना सीख लिया है।

सड़कों पर से रोज़ गुज़रते उजले लोगों
ने पहने हैं अब नकली बेजान मुखौटे
पुते हुए हैं आज सफेदी से जो चेहरे
छिपे हुए हैं उनमें धब्बे मोटे-मोटे
नहीं जरूरत जादूगर जो ठगने आए
हमने जादूगर को ठगना सीख लिया है
नहीं ज़रूरत अजगर की जो डसने आए
हमने अजगर को भी डसना सीख लिया है।

छोटी-छोटी दीवारें खुद खींच-खींचकर
हमने अपने हाथों घेरे रच डाले हैं
कहने को हम साँस ले रहे मुक्त गगन में
पर दिल के दरवाज़े पर सौ-सौ ताले हैं
नहीं ज़रूरत कारागर की अपने घर में
बन्दी बनकर हमने बसना सीख लिया है
नहीं ज़रूरत अजगर की जो डसने आए
हमने अजगर को भी डसना सीख लिया है।

पहन मुखौटा देशभक्त बन ग्रानेवालो !
सही देशभक्तों की अब पहचान चाहिए ।।

आज सभी को अपने ही घर की चिन्ता है
फिर चाहे यह देश समन्दर में बह जाए
आज सभी को अपना पेट भरे यह चिन्ता
सारा देश भले भूखा-प्यासा रह जाए
निज सन्तानों का यह हाल देखकर बोलो
भारत माता अपना दर्द किसे कह पाए
सुजला सुफला शष्य श्यामला धरतीवालो !
इस भारत को अब पवित्र परिधान चाहिए ।।

देश-प्रेम के गीत सुनहरे गानेवालो !
आज देश को खोया निज सम्मान चाहिए ।
भारत का नव-इतिहास बनानेवालो !
खून नहीं इसको अपना अभिमान चाहिए ।।

शांतिसेना और शिवसेना भले ही मत बनाओ।
हर मनुज को मनुजता के मंच पर लाकर बिठा दो।

हो सुरक्षा के लिए, अन्याय के प्रतिकार खातिर
किन्तु सेना शब्द ही है युद्ध का पर्यायवाची
बन्दरों के हाथ में अब सौंपकर तलवार तीखी
क्यों सिखाते हो इन्हें तुम वृत्ति यह दोनों पिशाची
कौरवों को शस्त्र देकर पांडवों के सारथी बिलकुल न होना।
गा सको तो शांति-सहअस्तित्व के तुम गीत गाओ॥
शांतिसेना और शिवसेना भले ही मत बनाओ।
हर मनुज को मनुजता के मंच पर लाकर बिठा दो॥

मूल्य होगा जय-पराजय का किसी पाषाण-युग में
आज समता भाव ही सबके हृदय को खींचता है
पूज्य वह प्रासाद-कुटिया की विषमता को मिटाकर
फलित करने पंथ को जीवन श्रम-कण सींचता है
अब न दो तुम दान अथवा पुण्य की कोरी दुहाई
अपर के अधिकार पर अधिकार अपना मत जमाओ॥
शांतिसेना और शिवसेना भले ही मत बनाओ।
हर मनुज को मनुजता के मंच पर लाकर बिठा दो॥

मैत्री, सह-अस्तित्व, शान्ति के मूल्यों को
विज्ञान नाम पर हम ही खुद इनकार किए हैं
मानवता के नव सर्जन की चिंता में हम
टूटन और घुटन को ही स्वीकार किए हैं

नहीं जरूरत ईश्वर को जो छलने आए
हमने ईश्वर को भी छलना सीख लिया है
नहीं जरूरत अजगर को जो डसने आए
हमने अजगर को भी डसना सीख लिया है ॥

हर किनारा तो डूबी नाव का बनता सहारा
डूबते को जो बचाए प्राण थे उसको समर्पित।

गगन के सूने तखत पर नखत अनगिन उग चुके हैं
और धरती की कलाई पर बँधी घड़ियां सहस्रों
काल की बेहाल लपटों में झुलसते सुमन कितने
कौन बतलाए कि जीवन किस कला का नाम है
हर सितारे ने न इस वीरान जीवन को निखारा
जो उजारे इस तमस को हो सकेगा वही अर्चित ।

टीसती आहें, सुलगते साँस, तीखी वेदनाएँ
मुसकराते चेहरों पर गीत की कोमल लताएँ
सृष्टि के इस भाल पर क्या-क्या घटा, क्या-क्या मिटा है
एक घटना बाद दुर्घटना घटे वह ज़िंदगी है
हर सुधा की बूंद ने कब घुटे प्राणों को उबारा
जो उबारे मिट स्वयं उस बूंद से है कौन परिचित !

तुम न पूछो कहाँ मंज़िल, राह खुद मंज़िल लिए है
रात के तारे नहीं क्या भोर की शबनम पिए हैं

हर सफलता चूमती पुरुषार्थ के पावन चरण नित
और दुर्बलता स्वयं ही मौत के घर का निमंत्रण
क्या कभी हर स्नेह ने हर एक दीपक को दुलारा
जो दुलारे व्यथित दिल को है उसे श्रद्धांजलि अर्पित।

६४

सहते-सहते मैं इतनी अभ्यस्त हो गई
जितनी भी पीड़ाएँ दोगे
बिना शिकायत सह लूँगी अब।

पता नहीं यह कुंठा है या सधी साधना
स्थितियाँ बदल रहीं या जीवन बदल रहा है
जो विद्रोह जगा मन की हर एक परत में
वह अब धीरे-धीरे खुद ही सम्हल रहा है
अब तक तो इनकार किया था झुक जाने से
जिधर बहाना चाहो
दिल से उसी स्रोत में बह लूँगी अब।

मूल्य चुकाना होगा अपनी ही भूलों का
जिसके कारण अब तक जीवन उलझाया है
अपने ही हाथों से अपनी दुर्बलता को
दुनिया की वहमी नज़रों को दिखलाया है
मन के उद्वेलन ने अपना पथ पकड़ा जब
जो भी बीतेगा मुझ पर
मैं मौन भाव से रह लूँगी अब।

फूल की मुसकान लेकर क्या करूँगी
रस लुटाना जब नहीं मैं जानती हूँ।
बाँसुरी की तान लेकर क्या करूँगी
गीत गाना जब नहीं मैं जानती हूँ।

सृष्टि के आभूषणों को तोड़ दो अब
स्वयं के सौंदर्य पर विश्वास कर लो
रिक्त की अवहेलना होती रही है
स्वयं के कर्तृत्व से खुद ही संवर लो
अब तुम्हें आह्वान देकर क्या करूँगी
जब रिझाना ही नहीं मैं जानती हूँ।

खोल दो मेरे सभी इन साथियों को
दूसरों की मेहरबानी को न माँगे
हाथ में लेकर दीया खाली स्वयं का
घर दिखाने दूसरों को अब न भागे
हाथ में पतवार लेकर क्या करूँगी
पार पहुँचाना न जब मैं जानती हूँ।

आदमी को आदमी की है जरूरत
किन्तु क्या अहसान कोई सह सकेगा

आज हमको कल तुम्हें होगी अपेक्षा
एक-सा कोई कभी क्या रह सकेगा
व्यर्थ ही अहसान लेकर क्या करूँ,
बदला चुकाना जब नहीं मैं जानती हूँ।

फूल की मुसकान लेकर क्या करूँगी
रस लुटाना जब नहीं मैं जानती हूँ।
बाँसुरी को तान लेकर क्या करूँगी
गीत गाना जब नहीं मैं जानती हूँ।

इन काले बालों पर ही तो मोती की माँगें फबती हैं।

कौन बुरा है कौन भला है यह तो कहना बहुत कठिन है
जिसके मन में जो भा जाए बस उसको भगवान् समझ लो
सब अपने-अपने स्वार्थों को लिए खड़े हैं इस दुनिया में
जिसका जिससे स्वार्थ पूर्ण हो जाए उसे महान् समझ लो
निर्झर-पर्वत-घास सभी से यह धरती सुन्दर लगती है ॥

घृणा करो मत किसी मनुज से सबकी अपनी भिन्न दशा है
एक शैल पर माणक उपजे और दूसरे पर ज्वाला है
धर्म, देश, धन, जाति, रंग से किसे समझते ऊँचा-नीचा
अहं किसी का नहीं चलेगा अंतिम मंज़िल यमशाला है
यह वासन्ती पवन कभी क्या अपने सौरभ पर छकती है!

जो हत्यारे हैं उनमें ही भ्रातृभाव पनपेगा गहरा
मार न सकते जो वे मरने से भी क्षण-क्षण काँप रहे हैं
शक्ति-स्रोत को उत्पथ से अब सत्पथ में तुम मोड़ दिखाओ
अपने-अपने मानदण्ड से हम तो सब को माप रहे हैं
मन का भ्रम धुल जाने से ही सारी दुविधाएँ भगती हैं ॥

६७

हारों जलती रही रात-दिन आज दिवाली आई है।
मुरझाए बिलखे चेहरे पर फिर ये खुशियाँ छाई हैं।

विस्मृत कर दो तुम अतीत को, वर्तमान में जी देखो
पिया आज तक ज़हर, सुधा की अब दो बूँदें पी देखो
दुनिया का हर एक आदमी
आशंका से भरा हुआ
बहुत सुनाया, अर्थ न निकला, अब होंठों को सी देखो
सांय-सांय कर जली चिताओं ने साँसें लौटाई हैं।।

मैं पूछूं तुमसे क्या तुमने अपने को पहचान लिया?
किस धरती का हीरा, किस नभ का ध्रुवतारा जान लिया?
औरों से शायद तुमने
पग-पग पर धोखा खाया है।
खाली घट को भरा किसी के कहने से बस मान लिया
गम के गीतों पर अब सुख की तितली आ मँडराई है।

रोने का युग बीत गया हँसने की ये ही घड़ियाँ हैं
मरघट पर गीतों के गुम्बज कब्रों पर फुलझड़ियाँ हैं

एक हाथ ने तम पाला है
एक हाथ में उजियाला
जीवन को बाँधे रहती नित जनम-मरण की कड़ियाँ हैं।
छूटी जुदाई, आज मिलन की बजी सखे शहनाई है।

६८

हम तो बँधे हुए कारा में
अंकन की छिछली धारा में
इसीलिए तुमको घेरावों में ही हम देखा करते हैं ॥

गागर यह निःसीम जलधि को सीमा में आवद्ध कर रहा
सागर यह जाने कितने गागर भरकर अश्रान्त चल रहा
रीते घट को भरा देखकर
जीर्ण नाव को तरा देखकर
इस विराट छवि को हम अपने-अपने दर्पण में भरते हैं ॥

मुक्त गगन को बाँध दिया छोटे-से घर में शिल्पकार ने
घोड़े को ले लिया नियन्त्रण में कौशल से घुड़सवार ने
उजड़े में घर बसा हमारा
शून्य गगन में चमका तारा
इसीलिए आगे-पीछे का हम फिर से लेखा करते हैं ॥

जंग लगे लोहे से पूछो उसकी कीमत क्या है जग में
बिना पंख वाले पंछी ज्यों, हम कब उड़ सकते थे नभ में ?
तुमने सारा जंग उतारा
पंख-कटों को दिया सहारा
इसीलिए अंगुलियों से टेढ़ी-मेढ़ी रेखा करते हैं ॥

साथियो !
अब गिड़गिड़ाने का समय विलकुल नहीं है।
स्वयं के द्वारा स्वयं की शक्तियों को आजमाओ।

कौन ताकत है कि जिसका सामना हम कर न सकते
कौन मंज़िल है जहाँ जाकर नहीं ये चरण रुकते
सपन मनचाहा फला है स्वयं के पुरुषार्थ से ही
दूसरों के वल चढ़े वे मेघ क्या नीचे न गिरते ?
ज़िन्दगी में स्वर्ण अवसर है यही इतिहासकारो !
छोड़ महलों की विलासी, गीत श्रम के गुनगुनाओ।
साथियो !
अब गिड़गिड़ाने का समय बिलकुल नहीं है।
स्वयं के द्वारा स्वयं की शक्तियों को आजमाओ।

जो स्वयं गतिशील उसका भाग्य खुद गतिमान होता
भाग्य सो जाता-उसी का जो स्वयं दिन-रात सोता
स्वयं के ही हाथ में है स्वयं का सारा हिताहित
जी रहा औरों भरोसे वह स्वयं का सत्त्व खोता

दूसरों को कष्ट देना स्वयं के खातिर गुनाह है
है निराशा सामने अब तीर कौशल से चलाओ।
साथियो !
अब गिड़गिड़ाने का समय बिलकुल नहीं है
स्वयं के द्वारा स्वयं की शक्तियों को आजमाओ।

साथियो !
अब गिड़गिड़ाने का समय बिलकुल नहीं है ।
स्वयं के द्वारा स्वयं की शक्तियों को आजमाओ ।

कौन ताकत है कि जिसका सामना हम कर न सकते
कौन मंज़िल है जहाँ जाकर नहीं ये चरण रुकते
सपन मनचाहा फला है स्वयं के पुरुपार्थ से ही
दूसरों के बल चढ़े वे मेघ क्या नीचे न गिरते ?
जिन्दगी में स्वर्ण अवसर है यही इतिहासकारो !
छोड़ महलों की विलासी, गीत श्रम के गुनगुनाओ ।
साथियो !
अब गिड़गिड़ाने का समय बिलकुल नहीं है।
स्वयं के द्वारा स्वयं की शक्तियों को आजमाओ ।

जो स्वयं गतिशील उसका भाग्य खुद गतिमान होता
भाग्य सो जाता-उसी का जो स्वयं दिन-रात सोता
स्वयं के ही हाथ में है..स्वयं का सारा हिताहित
जी रहा औरों भरोसे वह स्वयं का सत्त्व खोता

दूसरों को कष्ट देना स्वयं के खातिर गुनाह है
है निराशा सामने अब तीर कौशल से चलाओ।
साथियो !
अब गिड़गिड़ाने का समय बिल्कुल नहीं है
स्वयं के द्वारा स्वयं की शक्तियों को आजमाओ।

७०

दर्पण के अनुरूप वदलते रहते हो तुम।
तव वोलो सच्चाई कैसे परखी जाए।
शव्दों का आवरण चढ़ाकर छिप जाते जव,
हम तो रह जाते हैं उसमें ही भरमाए।

सवकी अपनी भिन्न-भिन्न होती हैं आँखें
अंकन सवके सहज भिन्नता लिए हुए हैं
कहीं तीव्र आलोक लिए जल रहे दीए हैं
कहीं मन्द आलोक लिए जल रहे दीए हैं
मन्द तीव्र आलोकों में उभरे चित्रों को
जान लिया हमनें यथार्थ, यह कव हो जाए।
दर्पण के अनुरूप वदलते रहते हो तुम,
तव वोलो सच्चाई कैसे परखी जाए।

सागर गागर में भर-भरकर यदि वाहर आए
फिर हम सागर की गहराई को क्या जानें
कर सकते हो घट पर इसका दोषारोपण,

दर्पण के अनुरूप बदलते रहते हो तुम,
- तब बोलो सच्चाई कैसे परखी जाए।

तुम इसको अपनी उदारता कह सकते हो,
लेकिन हमको तो विश्वास नहीं होता है
सबको पाने की आकांक्षाएँ रखता जो,
वह पाने के बदले सचमुच ही खोता है
एकरूपता में तो सहज गम्य हो जाते
किन्तु विविधता में आती अनगिन बाधाएँ
दर्पण के अनुरूप बदलते रहते हो तुम
तो बोलो सच्चाई कैसे परखी जाए!

इस दुनिया को भरमा दूंगी
कोई कृत्रिम चाँद दिखाकर
मेरे प्यासे नयन-पुतलियों में तुम चन्दा बन मुसकाओ।
इस बिरवे की डाल-डाल पर
नकली फूल खिला दूंगी मैं
पर मेरे मुरझाए मनड़े पर खुशियाँ बनकर छा जाओ।

मैंने जितनी जिज्ञासा की तुम उसके उत्तर बन आए
मैंने जब चाहा सूनी हाटों पर भी मेले लगवाए
इस दुनिया को बहका दूंगी
कोई और दिखाकर चेहरा
मेरी सूनी नगरी को आबाद बनाने तुम आ जाओ।

ऐसा कौन नखत है जिसको कभी सवेरा नहीं लूटता
ऐसा कौन काँच का प्याला जो गिरकर भी नहीं फूटता
इस दुनिया को बहला दूंगी
कोई देकर नया खिलौना
मेरी भावों की वीणा के तुम ही आकर तार मिलाओ।

७३

जब से तुम इस नील गगन में
चंदा बनकर मुसकाए हो
तब से इस अँधियारे घर में दीप जलाना छोड़ दिया है।

दीप जलाए अनगिन मैंने पर आलोक न ठहरा अब तक
मुझ पर उल्टा भड़के तम का लगा हुआ है पहरा अब तक
जब से तुमने सूने घर के
आँगन में यह पाँव धरा है
तब से मैंने इस दुनिया में मीत बनाना छोड़ दिया है।

सूखे कंठों ने अधरों से हाथ जोड़ की एक शिकायत
अब तुम छेड़ो नहीं तराना बिक जाए न हमारी इज्ज़त
जब से तुमने कंठों को क्या
इस मन को भी तृप्त किया है
तब से इस जलधर के आगे कर फैलाना छोड़ दिया है।

पत्थर-पत्थर पूज लिया है किसी अनीप्सित आशंका से
पता नहीं क्यों घिरे हुए हैं फिर भी हम पग-पग शंका से
जब से तुमने बता दिया है
राज स्वयं अपने पौरुष का
तब से मैंने इस दुनिया का देव मनाना छोड़ दिया है।

इस दुनिया को भरमा दूंगी
कोई कृत्रिम चाँद दिखाकर
मेरी प्यासी नयन-पुतलियों में तुम चन्दा बन मुसकाओ।
इस बिरवे की डाल-डाल पर
नकली फूल खिला दूंगी मैं
पर मेरे मुरझाए मनड़े पर खुशियाँ बनकर छा जाओ।

मैंने जितनी जिज्ञासा की तुम उसके उत्तर बन आए
मैंने जब चाहा सूनी हाटों पर भी मेले लगवाए
इस दुनिया को बहका दूंगी
कोई और दिखाकर चेहरा
मेरी सूनी नगरी को आबाद बनाने तुम आ जाओ।

ऐसा कौन नखत है जिसको कभी सवेरा नहीं लूटता
ऐसा कौन काँच का प्याला जो गिरकर भी नहीं फूटता
इस दुनिया को बहला दूंगी
कोई देकर नया खिलौना
मेरी भावों की वीणा के तुम ही आकर तार मिलाओ।

जिस डाली पर फूल खिले थे तुमने उसको तोड़ गिराया
सूखी टहनी को सरसाकर एक नया इतिहास बनाया

जग के जख्मों को भर दूंगी
जीवन का हर मोल चुकाकर
मेरे इन गहरे छालों पर तुम ही आकर लेप लगाओ।

धरती के कण-कण पर अंकित छाया मिली तुम्हारी सचमुच
अम्बर के हर स्वर में गुंजित वाणी सुनी तुम्हारी सचमुच
दुनिया को तो बहला दूंगी
कोई बीते गीत सुनाकर
पर मुझ में पुलकन भरने को तुम ही अपना गीत सुनाओ।